मंथन क्रमांक 16 जे एन यू संस्कृति और भारत

भारत में स्वतंत्रता के समय से ही दो विचारधाराएँ एक दूसरे के विपरीत प्रतिस्पर्धा कर रही थीं (1)गॉधी विचार (2) नेहरु विचार। गॉधी विचारधारा आर्य संस्कारों से प्रभावित थी जिसे अब वैदिक,सनातन हिन्दू या भारतीय संस्कृति भी कहते हैं, तो नेहरु विचारधारा में आर्य संस्कारों को छोड़कर पाष्चात्य, इस्लामिक, साम्यवादी तथा अन्य सबका मिलाजुला समावेष था। इसमें भी सर्वाधिक प्रभाव समाजवादी धारा का था। तीसरी साम्प्रदायिक विचारधारा का प्रभाव नहीं था क्योंकि विभाजन के बाद मुस्लिम धारा प्रभावहीन हुई तो गॉधी हत्या के बाद संघ विचार भी कटघरे में आ गया। फिर भी संघ परिवार ने हिन्दू शब्द पर अपना अधिकार जमाया तो साम्यवाद ने समाज शब्द पर जबकि दोनों का ही न हिन्दू शब्द से कभी कुछ लेना देना रहा न ही समाज शब्द से।

गॉधी विचारधारा का मुख्य तत्व है सामाजिक राजनीति और नेहरु विचारधारा का है राजनैतिक समाज। गांधी मानते थे लोकतांत्रिक संसद और नेहरु मानते थे संसदीय लोकतंत्र। गॉधी तंत्र को प्रबंधक मानते थे तो नेहरु तंत्र को संरक्षक। गॉधी विचारधारा में सत्य, अहिंसा, वर्ग समन्वय, हिन्दुत्व, व्यक्ति स्वतंत्रता, सहजीवन, अधिकारों का अकेन्द्रियकरण, कर्तव्य प्रधानता, श्रम सम्मान, नैतिकता, संस्थागत चरित्र, सत्ता का अकेन्द्रियकरण आदि गुण माने जाते हैं। दूसरी ओर नेहरु विचार धारा में चालाकी, बल प्रयोग, वर्ग निर्माण और वर्ग विद्वेष, उच्चश्रृंखलता अल्पसंख्यक प्रोत्साहन, सुषासन, कुटनीति,अधिकार प्रधानता, संगठन शक्ति, बुद्धिजीवी महत्व आदि शामिल रहे। गॉधी की हत्या होते ही नेहरु संस्कृति सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करने लगी। गॉधी विचारधारा को आगे बढाने के लिए बनी संस्था सर्वोदय भी नेहरु विचारों से प्रभावित होती चली गई क्योंकि सर्वोदय परिवार में संस्कारित और चरित्रवान लोगों का बाहुल्य रहा है। ये लोग चालाकी को न समझ कर संघ विचार को ही हिन्दू संस्कृति मानने लगे और सर्वोदय गॉधी के अभाव में नेहरु की ओर झुकता चला गया।

कु छ वर्ष बाद ही पंडित नेहरु ने अपनी विचारधारा के विस्तार के लिए जवाहर लाल नेहरु युनिवर्सिटी की स्थापना की और धीरे धीरे उसे भारत की सर्वश्रेष्ठ युनिवर्सिटी का दर्जा दे दिया । जे एन यू इस तरह नेहरु की विचारधारा के संवाहक और पोषक के रुप में काम करने लगी। वहॉ से अनेक स्थापित विद्वान निकले जिनमें से अधिकांष वामपंथी विचारों के संवाहक रहे। दूसरी ओर उसी नेहरु की पारिवारिक सत्ता ने जे एन यू से निकले विद्वानों को देष के महत्वपूर्ण राजनैतिक सामाजिक साहित्यिक पदों पर स्थापित करना शुरु कर दिया । इस तरह सत्ता और जे एन यू संस्कृति के तालमेल ने पूरे देष में जे एन यू संस्कृति को एक राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त विचार धारा के रुप में स्थापित कर दिया जो 65 वर्षो तक निरंतर फलती फूलती रही।

भारत में हिंसा ,चरित्रपतन, वर्ग विद्वेष, अल्प संख्यक तुष्टिकरण, सत्ता का केन्द्रियकरण, संगठनो का टकराव जैसी समस्याएँ सत्ता और जे एन यू संस्कृति के तालमेल का ही परिणाम रही। इस विचारधारा ने नेहरु की सोच से भी आगे बढकर लोक को संरक्षक की जगह शासक,वर्ग विद्वेष की जगह वर्ग संघर्ष, बुद्धिजीवी प्रोत्साहन की जगह श्रम शोषण, अल्पसंख्यक प्रोत्साहन की जगह हिन्दू विरोध, कूटनीति की जगह धूर्तता,बल प्रयोग की जगह हिंसा जैसी बुराईयों को बढाया। जे एन यू ने कोई ऐसा अवसर नहीं छोडा जिसने गॉधी विचारधारा को पराजित और अपमानित न किया हो। जे एन यू में खुलेआम नक्सलियों द्वारा भारतीय सैनिको की हत्या को सम्मानित किया गया। साम्यवाद धर्म को अफीम कहता है और रामकृष्ण, देवी दुर्गा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता किन्तु हिन्दुत्व को अपमानित करने के लिए रावण, कुंभ करण और महिषासुर का अस्तित्व स्वीकार करता है। चीन और भारत के टकराव के समय भी जे एन यू की विचारधारा विपरीत ही दिखती है। कष्मीर के मामले में जे एन यू बिल्कुल नग्न स्वरुप में सामने आता है और अल्प संख्यकों का तो वह प्रमुख वकील बन जाता है । जे एन यू में सबसे पहले बालिग होते ही चरित्रहीनता का प्रषिक्षण दिया जाता है और उन्हे भावना विहीन बनाया जाता है। महिला और पुरुष के बीच की दूरी घटाने के प्रषिक्षण का पूरा नेतृत्व जे एन यू के पास है किन्तु महिला अधिकार के लिए वर्ग संघर्ष का तानाबाना भी जे एन यू ही बुनता रहता है। यदि महिला पुरुष के बीच दूरी घटने का मामूली सा भी दुष्परिणाम दिखा तो जे एन यू आसमान सर पर उठा लेता है। यदि ठीक से सर्वेक्षण किया जाये तो जे एन यू प्रषिक्षित आन्दोलनकारी महिलाओ का व्यक्तिगत जीवन परम्परागत महिलाओं की तुलना में अधिक परिवार तोडक और दुष्चरित्र होना संभव है। जे एन यू से प्रषिक्षण प्राप्त साहित्यकार ,कलाकार, लेखक और कवि आदिवासी गैर आदिवासी, सवर्ण हरिजन, गरीब अमीर, श्रमजीवी पूॅजीपति, महिला और पुरुष युवा वृद्ध के नारे पर एक वर्ग के पक्ष में वातावरण बनाते हैं और उसी संस्कृति के पोषक शासकीय अधिकारी, न्यायाधीष, और नेता उस वातावरण को सर्वाधिक महत्व देकर अनुपालन में कानून बना देते हैं। यह कानून वर्ग संघर्ष का आधार बन जाता है। मुझे याद है कि गोधरा में हुआ रेल अग्निकांड के समय जे एन यू के प्रचार और उनके अधिकारियों के समर्थन से यह असत्य भी सत्य के समान स्थापित हो गया कि रेलडब्बे में आग अंदर से लगाई गई थी, बाहरी भीड द्वारा नहीं। कल्पना की जा सकती है कि इतना सफेद झूठ भी सत्य के समान स्थापित कर दिया गया । मोदी के पूर्व तक भारत में जे एन यू संस्कृति का इतना प्रभाव था कि उसे सर्व सत्ता सम्पन्न तक माना जाता था और भारत में किसी की ऐसी स्थिति नहीं थी कि उनके गलत कार्यो पर प्रष्न उठा सके। सत्ता, संसद, संविधान, साहित्य, कला आदि सब जगह चाहे पक्ष हो या विपक्ष, सब जगह जे एन यू संस्कृति के समर्थकों का एक छत्र साम्राज्य था।

मोदी जी के आने के बाद जे एन यू संस्कृति को चुनौती मिली। प्रारंभ में तो उस संस्कृति के स्थापित कलाकार साहित्यकार राजनेता जे एन यू के छात्रो को आगे करके टकराने का भरपूर प्रयोग किये। किन्तु संघ विचार धारा के सामने आने के बाद वे अब तक सफल नहीं हो सके हैं। यह सही है कि अब भी जे एन यू संस्कृति के पोषक अनेक लोग न्यायपालिका और कार्यपालिका में बैठकर पूरी ईमानदारी से सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करते रहते हैं। ऐसे लोग पूरी तरह ईमानदार होते हैं किन्तु वे जिस संस्कृति में पले बढे हैं उस संस्कृति को ही वे श्रेष्ठ मान कर ईमानदारी से अपने कार्य करते रहते हैं। किन्तु यह भी सच है कि कालान्तर में जे एन यू संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर एकाधिकार समाप्त हो जायेगा।

मैं मानता हूँ कि जे एन यू संस्कृति का स्थान यदि संघ संस्कृति ने ले लिया तो वह भी घातक ही होगा क्योंकि एक नागनाथ और दूसरी सापनाथ है। किन्तु गॉधी की आर्य संस्कृति अभी इस स्थिति में नहीं है कि वह दोनों से एक साथ मुकाबला कर सके। इसलिये मजबूरी है कि अपनी सुरक्षा के लिये जे एन यू संस्कृति के समक्ष ताल ठोककर खडी संघ संस्कृति का पूरा समर्थन किया जाये । वैसे भी जे एन यू संस्कृति की तुलना मे संघ संस्कृति बहुत कम खतरनाक है तथा इसे सत्ता मे भी वैसा स्थान प्राप्त नहीं है जैसा जे एन यू संस्कृति का पिछली सरकारों के समय रहा । इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हम भारत से जे एन यू संस्कृति के समापन के लिये पूरा प्रयास करें। हमें इतना अवष्य सतर्क रहना चाहिये कि नेहरू संस्कृति के विरूद्ध संघ संस्कृति का हम समर्थन सहयोग भले ही करें किन्तु उसे अपनी संस्कृति मानने की भूल न करें। क्योकि हमारी भारतीय संस्कृति तो वह आर्य संस्कृति है जिसके अनुपालन मे गांधी जी ने अपना सबकुछ लगाया। मेरा अपने मित्रों से निवेदन है कि वे इस संक्रमण काल मे सत्य के समान स्थापित असत्य को चुनौती देने का प्रयास करें और ऐसा प्रयास ही जे एन यू संस्कृति और संघ संस्कृति से सामूहिक मुकाबला कर सकता है।

प्रष्नोत्तर

प्रष्न 1–आपने गांधी और नेहरू के विचारों के बीच जिस खाई को विस्तार से बताया है वह चौकाने वाली भी है और सत्य भी है। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि गांधी जी पंडित नेहरू के विषय मे सब कुछ जानते हुए भी उन्हे सबसे ज्यादा महत्व देते थे। इन दोनो विरोधाभासों का राज क्या है यह बताने की कृपा करें।

उत्तर– मै जानता हूँ कि दोनो ही बाते सच हैं और गांधी भी गलत नहीं थे। योजना बनाने मे चरित्र का कम और नीतियोंका अधिक महत्व होता है, जबकि कार्यान्वयन मे नीतियों का कम और चरित्र का अधिक महत्व होता है। गांधी के साथ काम करने वाले जो लोग उच्च चरित्रवान थे वे निरंतर सत्ता से दूर रहना चाहते थे। गांधी की मजबूरी थी कि वे नेहरू पटेल और अम्बेडकर मे से ही एक का चयन करें। इन तीनो मे पटेल अधिक चरित्रवान थे। अम्बेडकर तो किसी लायक थे ही नही। नेहरू नीतियो के मामले मे पटेल से अधिक अच्छे थे, क्योकि नेहरू बालिग मताधिकार के पक्षधर थे और पटेल सीमित मताधिकार के। गांधी तो बालिग मताधिकार से भी उपर जाकर लोकस्वराज्य के पक्षधर रहे। दूसरी ओर पटेल, नेहरू की अपेक्षा अधिक उग्र राष्ट्रवादी थे जो गांधी को पसंद नही था। पटेल संघ की विचार धारा से भी कुछ ज्यादा ही नजदीक थे। ऐसी परिस्थिति मे गांधी के सामने नेहरू के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था। यदि गांधी की जगह मैं भी रहा होता तो मेरे सामने भी कोई अन्य विकल्प नहीं था।

यह बात भी स्पष्ट है कि गांधी सत्ता की अपेक्षा समाज व्यवस्था को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनका मानना था कि जब सत्ता के पास बहुत कम अधिकार होंगे तो नेहरू वहां कुछ ज्यादा फेर बदल नहीं कर पायेंगे और नियंत्रण के लिये गांधी जी स्वयं थे ही। गांधी हत्या के बाद जो परिस्थितियां नेहरू ओर अम्बेडकर ने बनाई उसकी गांधी को कोई कल्पना नही थी। ऐसी परिस्थिति मे गांधी इसके अतिरिक्त और क्या कर सकते थे। मै समझता हूँ कि गांधी ने जो किया वह उस समय की परिस्थितियों के अनुसार पूरी तरह ठीक था।

प्रष्न 2–आज कल गांधी खादी और चरखा की विषेष चर्चा हो रही है। इस संबंध मे आपका क्या विचार है।

उत्तर– मैने एक बार देखा कि रामलीला मे राम और रावण के बीच घनघोर युद्ध हुआ और रावण के मरने के बाद दर्षको ने राम को बहुत उपहार दिये। घर जाने के बाद राम और रावण ने सारे उपहार आधे आधे बांट लिये क्योकि दोनो सगे भाई थे।

गांधी के समय दो विचार धाराएं भारत में काम कर रही थीं। एक विचार धारा ने गांधी के शरीर की हत्या कर दी और दूसरी ने उनके विचारो की । दोनो विचार धाराएं खादी और चरखे के नाम पर आज भी गांधी के नाम का उपयोग करने की छीना झपटी मे लगी हुई हैं, जबकि गांधी से दोनो का कोई मतलब नहीं । मैने टीवी की बहस मे गांधी वादियो को कहते सुना कि खादी एक विचार है और वर्तमान खादी उस विचार की हत्या कर रही है। मै आज तक नहीं समझा कि यदि खादी गांधी का सर्वोत्तम विचार है तो ग्राम स्वराज्य, मषीन और श्रम का संतुलन, वर्ग समन्वय क्या है? आज कल कोई सर्वोदयी कभी श्रम और मषीन का सम्बंध, वर्ग समन्वय अथवा ग्राम संसद के लिये कभी आंदोलन नहीं करता बल्कि मै आम तौर पर देखता हूँ कि सर्वोदय के लोग कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध करते हैं । ग्राम संसद की जगह आदर्ष ग्राम की बात करते हैं। उनका हर कार्य वर्ग सषक्तिकरण के साथ जुडा होता है और बात करेंगे खादी चरखा और गांधी की जैसे कि गांधी पर उनका अकेले का पेटेंट हो गया हो। नरेन्द्र मोदी को भी गांधी से कोई मतलब नहीं है। मोदी जी न तो कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि की चर्चा करते हैं न ही कभी ग्राम संसद या लोक स्वराज्य की । स्वषासन की जगह सुषासन उनका प्रिय नारा है। वर्ग समन्वय की जगह महिला, आदिवासी, हरिजन ,गरीब सषक्तिकरण को उन्होने आधार बना रखा है और दिन रात गांधी के नाम की माला जपते हैं। मैने सुना है कि कबीर दास के मरने के बाद उनकी लाष का बटवारा कैसे हो, इस पर भी विवाद रहा। वह स्थिति आज गांधी के नाम की हो रही है।

सिद्धान्त है कि मृत महापुरूषों के विचार बिना स्वयं विचारे आंख मूंदकर स्वीकार करना हमेषा घातक होता है। इसका अर्थ हुआ कि गांधी के विचारों की वर्तमान देष काल परिस्थिति अनुसार समीक्षा और संषोधन करके ही स्वीकार करना चाहिये। यह तो इस्लामिक मान्यता है कि किसी महापूरूष का कथन अंतिम सत्य है। मै चाहता हूं कि उपरोक्त इस्लामिक धारणा मे वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार संषोधन करने पर विचार के द्वार खुलने चाहिये। गांधी ने आंख मुंदकर महापूरूषों का अनुकरण नहीं किया, और देष काल परिस्थिति अनुसार नये मार्ग बताये। आज गांधी की वास्तविक मान्यता यही होगी कि अब आज की परिस्थिति अनुसार वर्तमान समस्याओ के समाधान खोजने का प्रयास हो और हर प्रयास मे मोदी और सर्वोदय का कोई बाधा न हो।

मंथन क्रमांक 17 अपराध और अपराध नियंत्रण

धर्म ,राष्ट्र और समाज रुपी तीन इकाईयों के संतुलन से व्यवस्था ठीक चलती है। यदि इन तीनों में से कोई भी एक खींचतान करने लगे तो अपराधों का बढना स्वाभाविक हैं । दुनिया में इन तीनों में भारी असंतुलन पैदा हो गया है। धर्म का स्थान सम्प्रदाय ने, राष्ट्र का राज्य ने,और समाज का संगठित वर्गों ने ले लिया है। परिणाम दुनिया में स्पष्ट दिख रहे हैं।

अपराध दो प्रकार के होते हैं– 1 सामूहिक अपराध 2 व्यक्तिगत अपराध। पूरी दुनिया में सब मिलाकर जितने अपराध होते हैं उनका 90 प्रतिषत धर्म और राष्ट्र के नाम पर किये जाते है। ये अपराध धर्म और राष्ट्र की अतिसक्रियता के परिणाम होते हैं। व्यक्तिगत अपराध पूरी दुनिया में बहुत कम होते हैं। फिर भी हम इस लेख के माध्यम से सिर्फ व्यक्तिगत अपराधों की चर्चा तक सीमित हैं। धर्म और राष्ट्र के नाम पर होने वाले,अपराधों की चर्चा अलग से करेंगे।

सबसे बडी बिडम्बना यह है कि दुनिया में आज तक अपराध की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं बन सकी और जब अपराधों की परिभाषा ही नहीं है और पहचान ही नहीं है तो नियंत्रण कैसे संभव है? भारत में भी ऐसी कोई परिभाषा और पहचान अस्तित्व में नहीं है। न तो संविधान, न ही सरकार और न ही न्यायपालिका आज तक स्पष्ट कर सकी है कि अपराध क्या है?

व्यक्ति के अधिकार तीन प्रकार के होते हैं– 1 प्राकृतिक 2 संवैधानिक 3 सामाजिक। प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन अपराध होता है। संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन गैरकानूनी होता है अपराध नहीं। सामाजिक अधिकारों का उल्लंघन अनैतिक होता है, न तो गैरकानूनी होता है, न ही अपराध। आष्चर्य है कि इतनी छोटी सी बात भी आज तक दुनिया में परिभाषित नहीं हो सकी, न ही भारत में हो सकी है । आप किसी अच्छे से अच्छे अन्तर्राष्ट्रीय,या राष्ट्रीय विद्वान से पूछ कर देखिये कि अपराध गैरकानूनी और अनैतिक में क्या फर्क होता है तो आपको पता चल जायेगा। आप किसी से पूछ कर देखिये कि भारत में अपराधियों की मात्रा का प्रतिषत क्या है तो कोई आपको 50 बतायेगा , तो कोई 90 और कोई 99 जबकि सच्चाई यह है कि भारत में अपराधियों और अपराधों का प्रतिषत कुल मिलाकर एक से दो के बीच होता है। अपराध गैरकानूनी और अनैतिक को एक साथ मिला देने से यह प्रतिषत बढ जाता है। स्वाभाविक है कि भूसे के ढेर से सुई का खोजना जितना कठिन होता है उतना ही कठिन समाज के बीच से अपराधी को खोजना होता है। मैं नहीं कह सकता कि भारत में यह भ्रम जानबूझकर फैलाया गया अथवा दुनिया की नकल करते हुये किन्तु यह सच है कि यह भ्रम सम्पूर्ण भारत में एक समान रुप में फैला हुआ है।

अपराध वृद्धि के कई कारण हैं– भारत में पुलिस और न्यायालय को इतना ओभरलोडेड बना दिया गया है कि वे अपराध की ठीक विवेचना कर ही नहीं पाते। पुलिस जल्दी जल्दी अपरिपक्व विवेचना के आधार पर न्यायालय में मुकदमा प्रस्तुत करती है तो न्यायालय धीरे धीरे अनंतकाल तक उसके न्याय में बाल की खाल निकालता रहता है। न्यायालय आज तक यह नहीं समझ सका कि किसी अपराधी का निर्दोष छूट जाना भी पीडित के साथ अन्याय है। न्यायालय को चाहिये था कि वह पुलिस को न्याय सहायक माने और पुलिस न्यायालय की संयुक्त भूमिका को अपराध नियंत्रण का आधार किन्तु न्यायालय अपने को अपराधी और पुलिस के बीच में न्यायकर्ता के रुप में स्थापित करने लगा जिसका परिणाम हुआ कि अपराधियों का बहुमत निर्दोष सिद्ध होकर छूटने लगा।

दूसरा कारण ये रहा कि हमारी विधायिका कभी दायित्व और कर्तव्य का अंतर नहीं समझ सकी। सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है तथा अन्य जनकल्याणकारी कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य। हमारी विधायिका ने विदेषों की नकल करते हुए जनकल्याणकारी कार्यो को अपना दायित्व मान लिया और उन्हें प्राथमिकता देने लगे । स्वाभाविक था कि अपराध नियंत्रण पीछे छूट गया। आज निकम्मे और बैठे ठाले परजीवी निरंतर, षिक्षा,स्वास्थ, गरीबी और भूख मिटाने के नाम पर इतनी बडी बडी मांगे प्रस्तुत करते रहते हैं कि पुलिस और न्यायालय का बजट सौतेला दिखने लगता है। सम्पूर्ण भारत के कुल बजट का एक प्रतिषत से भी कम पुलिस और न्यायालय पर खर्च होता है तो सेना पर तेरह प्रतिषत और अन्य जनकल्याण के कार्यो पर 86 प्रतिषत । इस एक प्रतिषत में भी 90 प्रतिषत घुसपैठ जनकल्याणकारी कार्यो की हो जाती है और कुल बजट का 10 नया पैसा ही वास्तविक अपराध नियंत्रण पर खर्च होता है। कानून भी इतने गलत बनते है कि बन्दूक और पिस्तौल को छोटा अपराध माना जाता है तो अवैध गांजा और अवैध अनाज को अधिक गंभीर। यहा तक कि गंभीर अपराधों में दोष सिद्धी का भार पुलिस पर डाला गया है और संदेह का लाभ अपराधी को मिलता है जबकि दहेज वन अपराध, आदिवासी हरिजन, कानून जैसे मामलों में इसका ठीक विपरीत है। भारत में पष्चिम की नकल करते हुये सिद्धांत बना कि भले ही 99 अपराधी निर्दोष सिद्ध हो जाये किन्तु एक भी निर्दोष दण्डित न हो जाये। एक ओर तो इतना उंचा आदर्ष और दूसरी ओर इतना लचर बजट। कोई तुलना ही नहीं हो सकती।

हमें समाधान के भी उपाय सुझाने होंगे। अपराध गैरकानूनी और अनैतिक का साफ साफ अंतर स्पष्ट करना होगा। हमें सरकार को भी समझाना होगा कि अपराध नियंत्रण उसका पहला दायित्व है और जनकल्याणकारी कार्य उसका स्वैच्छिक कर्तव्य । तदनुसार सरकार को अपनी बजट प्राथमिकताएँ भी बदलनी होंगी। न्यायापालिका को भी यह समझाना होगा कि उसे अपराध नियंत्रण की पहली प्राथमिकता मानना चाहिये। उसे यह भी समझना चाहिये कि पुलिस उनकी न्याय सहायक है, पक्षकार नहीं। यह बात भी भारत में साफ साफ दिखती है कि देष के अनेक क्षेत्रों में लोग गवाही देने से डरते हैं। यदि कोई गवाही देता भी है तो उसकी सुरक्षा को खतरा है। यदि पुलिस कानून तोडकर सुरक्षा देती है तो न्यायालय भी अपने प्रभाव का उपयोग करता है। ऐसी परिस्थिति में एक तात्कालिक उपाय करना चाहिये अर्थात अल्पकाल के लिए यह व्यवस्था होनी चाहिये कि किसी जिले का कलेक्टर,एस पी, जिला न्यायाधीष, संयुक्त रुप से महसूस करें कि उस जिले के लोग भय के कारण गवाही नहीं दे पा रहे हैं तो उस जिले में आपात व्यवस्था लागू कर सकते हैं। जिसका अर्थ होगा कि उस जिले में कुछ गंभीर अपराधों का गुप्तचर न्यायालय में गुप्त मुकदमा चलेगा जिसकी अपील भी गुप्तचर न्यायालय में ही होगी और सर्वोच्च गुप्तचर न्यायालय का

निर्णय अंतिम होगा जो अपराधी कभी नहीं जान पायेगा। वर्तमान समय में राज्य को न्यूनतम हिंसा और बलप्रयोग की जगह संतुलित हिंसा और बल प्रयोग का मार्ग अपनाना चाहिये। राज्य द्वारा दण्ड और हिंसा की मात्रा भय की आवष्यकता के अनुसार तय करनी चाहिये , किसी सिद्धांत के आधार पर नहीं। अल्पकाल के लिए कुछ अधिक कठोर दण्ड की भी व्यवस्था हो सकती है और उसके अंतर्गत खुलेआम फांसी का भी प्रावधान किया जा सकता है। यदि उसके बाद भी स्थिति नियंत्रित होते न दिखे तो यह भी घोषणा हो सकती है कि तीन महिने के अंदर पूरे देष से गुप्त मुकदमा प्रणाली के अन्तर्गत 50 लोगो को फांसी 500 को आजीवन कारावास दिया जायेगा।

अपराध नियंत्रण में धर्म, और समाज की भी भूमिका होनी चाहिए। धर्म तो व्यक्ति को अपराध से बचने का मार्ग सुझाता है और समाज उसे अनुषासित करता है । प्राचीन समय में समाज की अपराध नियंत्रण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी जिसे सामाजिक बहिष्कार कहा जाता था। मुस्लिम शासनकाल में बहिष्कार को हिंसा के साथ जोड दिया गया तो अंग्रेजों के शासनकाल में बहिष्कार को पूरी तरह अपराध बना दिया गया। वास्तव में सामाजिक बहिष्कार अपराध नियंत्रण का एक मजबूत माध्यम है जिसे कानूनी मान्यता भी मिलनी चाहिए, उस सीमा तक जब तक वह किसी के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन न करे और सामाजिक अधिकारों तक ही सीमित हो । इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को परिवार व्यवस्था से भी जुडना अनिवार्य कर दिया जाये और यह घोषित किया जाये कि परिवार का कोई सदस्य यदि अपराध करता है और परिवार जानते हुए भी उसे न नियंत्रित करता है, न ही परिवार से निकालता है तो उक्त व्यक्ति के अपराध के लिए परिवार को भी उत्तरदायी माना जा सकता है।

मैं समझता हूँ कि अपराध नियंत्रण कोई असंभव कार्य नहीं है यदि हम ठीक नीयत और ठीक योजना से मिलकर इस कार्य को करें। मुझे उम्मीद है कि अपराध नियंत्रण की दिषा में कुछ रचनात्मक प्रगति संभव होगी।

मंथन क्रमांक 18 मंहगाई का भूत

भूत और भय एक दूसरे के पूरक होते है। भूत से भय होता है और भय से भूत। भूत का अस्तित्व लगभग न के बराबर ही होता है और इसलिये उसका अच्छा या बुरा प्रभाव भी नही होता किन्तु लगभग शत प्रतिषत व्यक्ति भूत से भयभीत रहते है। यहां तक कि छोटे बच्चे भी क्योंकि बचपन से ही बच्चों मे भूत का अस्तित्व बना दिया जाता है।

ठीक भूत के समान ही स्थिति मंहगाई शब्द की भी है । न महंगाई है न ही आज तक उसका आम जन जीवन पर कोई बुरा प्रभाव पडा किन्तु स्वतंत्रता के तत्काल बाद से ही आज तक शत प्रतिषत भारत मंहगाई से चिन्तित है। सन सैतालीस से आज तक मै मंहगाई बढने की बात सुनता रहा हूँ तथा आज भी सुन रहा हूँ। किन्तु जब मै प्रचार से दूर होकर वास्तविकता को खोजने लगा तब मैने देखा कि मंहगाई बिल्कुल ही अस्तित्व हीन प्रचार है और षणयंत्र पूर्वक जान बूझकर समाज मे मंहगाई का भय पैदा किया जाता है। लगभग हर सरकार मंहगाई को कम करते करते बदल भी जाती है। फिर भी मंहगाई एक ऐसा काल्पनिक दैत्य है जो लगातार शक्तिषाली होते हुए दिखता है।

मान्य सिद्धान्त है कि किसी वस्तु की तुलना जिस आधार वस्तु से होती है उस आधार वस्तु को स्थिर होना चाहिये। बहुत प्राचीन समय से सोने को आधार माना गया था जो बाद मे भारत की स्वतंत्रता तक चांदी के रूप मे स्थिर रहा। स्वतंत्रता के बाद आधार बदल गया और वह रांगा से गुजरते गुजरते सरकारी मान्यता प्राप्त कागज तक आ गया। मै नही समझ सका कि सन सैतालीस मे एक चांदी के रूपये के बदले जितना सामान मिलता था उसकी तुलना मे आज के रूपये से उतना सामान कैसे संभव है। स्पष्ट है कि रूपया स्थान बदल लिया और उस स्थान बदलाव को धूर्त लोग मंहगाई के नाम से प्रचारित करते रहे।

मंहगाई और मुद्रा स्फीति अलग अलग शब्द हैं । मुद्रा स्फीति का अर्थ होता है नगद रूपया पर अधोषित कर और उसका प्रभाव होता है नगद रूपये का मूल्य ह्रास। इसका वस्तुओ की कीमत पर कोई प्रभाव नही पडता। अन्य किसी भी परिस्थिति मे मंहगाई नही बढती। क्योकि वस्तु मंहगी हो सकती है और वस्तुओ के औसत को मंहगाई कहा जाता है जो सिर्फ मुद्रा स्फीति होती है, मंहगाई नही । सन 47 मे एक मजदूर को दिनभर की मजदूरी के बदले मे जितना अनाज दिया जाता था उसकी तुलना मे आज लगभग 6 से 8 गुना तक अधिक अनाज दिया जाता है। कई बार प्रष्न करने के बाद भी किसी ने यह उत्तर नही दिया कि स्वतंत्रता के बाद अनाज सस्ता हुआ या नही और श्रम मंहगा हुआ या नही। यदि हम सम्पूर्ण भारत के जीवन स्तर का आकलन करे तो जीवन स्तर मे तैतीस प्रतिषत गरीब लोगो के बीच लगभग दो गुना सुधार हुआ है। यदि मंहगाई है तो या तो उसका दुष्प्रभाव नही है या उसका अच्छा प्रभाव पड रहा है। फिर भी स्पष्ट दिखते हुए भी मंहगाई और उसके दुष्प्रभाव की चर्चा निरंतर जारी है। देष विकास कर रहा है। संभव है कि तेतीस प्रतिषत गरीब लोगो की विकास दर एक हो, मध्यम वर्ग की 6 हो, उच्च वर्ग की 12 हो किन्तु विकास दर तो लगातार जारी है। मै नही समझा कि यदि मंहगाई है और उसका दुष्प्रभाव भी है तो तैतीस प्रतिषत गरीब तबके की विकास दर त्रृणात्मक क्यों नहीं है।

मंहगाई का अस्तित्व न होते हुए भी सत प्रतिषत लोगो को मंहगाई दिखती है। वह एक षणयंत्र है। जब किसी व्यक्ति का वेतन बढता है तो एकाएक उसे अधिक वस्तु उपलब्ध होने लगती है। मुद्रा स्फीति बढने से एक वर्ष मे उसे वह वस्तु घटते घटते फिर वही आ जाती है जहां उसे पहले मिलती थी। फिर से उसका वेतन बढता है और फिर वही क्रम शुरू हो जाता है। सन 47 मे किसी व्यक्ति को कुल वेतन मे एक किलो अनाज मिलता था तो आज वेतन 90 गुना बढ गया है और मुद्रा स्फीति भी 90 गुना बढ गई है। इसका अर्थ हुआ कि यदि उसकी क्रय शक्ति और वस्तुओ के मुल्य 90 गुने बढे तो मंहगाई कहां है। सच्चाई यह है कि सोना, चांदी और जमीन मंहगे हुए है। इसी तरह दाल खादय तेल डीजल पेट्रोल बहुत मामुली मंहगे हुए है।

अनाज कपडा दूध शक्कर सभी आवष्यक वस्तुए लगभग आधे मूल्य की हो गई हैं और इलेक्ट्रानिक्स वस्तुएं, आवागमन तो मटटी की मोल हो गई है। फिर भी मंहगाई का प्रचार आज भी जारी है।

स्वतंत्रता के पूर्व भी श्रम के साथ बुद्धिजीवियो का लगातार षणयंत्र चलता रहता था । सवर्ण और शुद्र का जातिगत आधार इसी के उपर टिका हुआ था। आज भी वह आधार शब्द बदल कर उसी तरह कायम है। भारत की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था में बुद्धिजीवियों का एकाधिकार है। उस एकाधिकार के अंतर्गत वे लोग उपभोक्तावादी संस्कृति को विस्तार देते है। उत्पादन का मूल्य न बढे और उपभोक्ताओ की कय शक्ति तथा आय निरंतर बढती रहे । इसका पूरा पूरा प्रचार लगातार बुद्धिजीवियों और पूजीपतियों द्वारा किया जाता रहा है। इन्ही के प्रतिनीधि सत्ता मे होते है, और इन्ही के प्रतिनीधियों का प्रचार माध्यमो पर भी एकाधिकार होता है। यही लोग विधायिका कार्यपालिका न्यायपालिका पर भी कब्जा जमाए रहते है। स्वतंत्रता से लेकर आज तक इन लोगो ने मिलजुल कर मंहगाई का भूत खडा किये रखा। विषेष कर सरकारी कर्मचारी अपना वेतन बढवाने के लिये, नेता सत्ता परिवर्तन का खेल खेलने के लिये तथा पूंजीपति अर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाने के लिये मंहगाई का प्रचार करते है और इन तीनो द्वारा धन और सुविधा की लालच मे मीडिया इसको हवा देती है।

यदि ठीक से विचार किया जाये ते मंहगाई अस्तित्व हीन शब्द है। मंहगाई आभासीय है, भावनात्मक है, इसका वास्तविकता से कोई संबंध नही। सन 39 से 47 तक कय शक्ति की तुलना मे वस्तुओ के मुल्य 12 गुना अधिक बढ गये थे तो उस समय वास्तव मे मंहगाई बढी थी और लोग परेषान थे किन्तु स्वतंत्रता के बाद स्थिति ठीक उल्टी हो गई । यदि रूपया 90 गुना गिरा है और सन 47 मे एक रूपया का एक किलो सामान मिलता था आज 90 रूपये मे मिल रहा है तो स्पष्ट समीकरण है कि वस्तु का मूल्य समतुल्य है, किन्तु उसे मंहगाई के साथ जोडा जाता है। आज तक किसी अर्थ शास्त्री ने यह नहीं बताया कि स्वतंत्रता के बाद आज तक मंहगाई कितने गुना बढी और उसका कितने गुना दुष्प्रभाव पडा? न तो उनके पास उत्तर है और न ही वे इस विषय पर चर्चा करना चाहते है। मै टीवी देखता हूँ तो मोटी मोटी बडे घरो की औरते सडक पर मंहगाई का रोना रोती दिखती है। उनका रोज बजट ही बिगडा रहता है। उन्हे क्या पता कि किसान कितनी मेहनत से उत्पादन करता है, कितनी मेहनत से वह लाकर बेचता है और उस उत्पादन और बिक्री पर भी वह टैक्स देता है। फिस टैक्स और उत्पादन की कीमत पर ये मोटे लोग और उनके एजेन्ट टीवी वाले मंहगाई का हल्ला करते हैं । सरकारें जान बूझकर घाटे का बजट बनाती हैं जिससे मंहगाई का अस्तित्व दिखता है।

कल्पना करिये कि यदि वर्तमान सरकार एकाएक घोषणा कर दे कि सौ रूपये का मूल्य भविष्य मे एक रूपया होगा तो यथार्थ मे किसी प्रकार का कोई अंतर नही पडेगा । सबकुछ वैसा ही रहेगा और सारी वस्तुओ का मूल्य सौ गुना घट जायेगा। क्या आप मानेंगे कि मंहगाई खत्म हो गई? इसका अर्थ हुआ कि रूपये के मूल्य परिवर्तन से मंहगाई का कोई संबंध नही है। मंहगाई का संबंध तो तब है जब औसत व्यक्ति की कय शक्ति की तुलना मे आम लोगो की सामान्य उपभोक्ता वस्तुए कम उपलब्ध होने लगे। वर्तमान समय मे वस्तु स्थिति इससे ठीक विपरीत है और मंहगाई का हल्ला हो रहा है। यदि सरकारो की नीयत ठीक हो और वे घाटे का बजट बनाना बंद कर दे तो मंहगाई का हल्ला अपने आप खत्म हो जायेगा। किन्तु सरकारो को लोक हित की जगह लोक प्रिय बजट बनाने की जल्दी रहती है। और इसलिये समाज को घोखा देने के लिये घाटे का बजट बनाते है। सभी सरकारे जानती है कि मंहगाई शब्द पूरी तरह असत्य है किन्तु विपक्ष मंहगाई बढने का हल्ला करता है और सत्ता पक्ष मंहगाई घटाने का आष्वासन देता है जबकि दोनो ही बाते झूठ होती है। स्वतंत्रता से लेकर आजतक भारत की आम जनता इस मंहगाई के प्रचार से भयभीत रहती है और धूर्त लोग इससे लाभान्वित होते रहते है। इस प्रचार को चुनौती देने की आवष्यकता है।

मंथन क्रमांक 19 विचार और साहित्य

साहित्य और विचार एक दूसरे के पूरक होते हैं। एक के अभाव में दूसरे की शक्ति का प्रभाव नहीं होता। विचार तत्व होता है, मंथन का परिणाम होता है, मस्तिष्क ग्राह्य होता है तो साहित्य विचारक के निष्कर्षों को आधार बनाता है, मंथन का अभाव होता है,हृदय ग्राह्य है, कला प्रधान होता है। विचार घी है तो साहित्य मटठा,विचार लंगडा है तो साहित्य अंधा,बिना साहित्य के विचार की स्थिति एक वस्त्रहीन नारी के समान है और बिना विचार के साहित्य वस्त्रालंकृत मट्टी की मूर्ति। दोनों का प्रभाव एक साथ जोडकर ही हो सकता है। कुछ अपवादों को छोड दे तो विचार और साहित्य किसी एक ही व्यक्ति में पूरा नहीं पाया जाता। किसी भी व्यक्ति में साहित्य या विचार में से कोई एक अधिक होता है तो दूसरा कम। विचारकों द्वारा गंभीर विचार मंथन के बाद निकाले हुए निष्कर्ष को समाज तक पहुॅचाने का दायित्व साहित्यकार का है। इस तरह विचार फल का बीज है और साहित्य पेड़। साहित्य अपने परिणाम समाज में इस प्रकार देता है कि वह परिणाम अंत में विचार तक पहुॅच जाये। न तो साहित्य के अभाव में विचारक का विचार समाज तक पहुॅच पाता है न ही विचारों के अभाव में साहित्य अंत में समाज में विचार का स्वरुप ग्रहण कर पाता है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। साहित्य समाज का दपर्ण माना जाता है। यदि साहित्य में कोई विकृति दिखती है तो वह समाज की विकृति है, साहित्य की नहीं क्योंकि साहित्य तो समाज का दर्पण होता है जो समाज के चेहरे को स्पष्ट मात्र करता है। दूसरी ओर ऐसा भी माना जाता है कि साहित्य ही समाज के स्वरुप का निर्माण करता है। साहित्य वह कारीगर है जो समाजरुपी मूर्ति को निरंतर काट छांटकर उसे समझने योग्य स्वरुप देने में लगा रहता है। इन दोनों ही सिद्धांतो की मान्यता है भले ही इनके अर्थ भिन्न भिन्न ही क्यों न हो।

साहित्य पर विचारों का भी बहुत प्रभाव पडता है तथा सामाजिक मान्यताओं का भी। साहित्यकार कभी कभी महत्वपूर्ण विचारों से प्रभावित होकर साहित्य की रचना करता है तो कभी कभी सामाजिक मान्यताओं से प्रभावित होकर भले ही ऐसी मान्यताएँ या ऐसे विचार विकार ग्रस्त ही क्यों न हों। वर्तमान समय में भारत में सभी सामाजिक इकाईयों का अधः पतन हुआ है। साहित्य भी इस अधःपतन से अछूता नहीं है। साहित्य में भी वैसी ही गिरावट आयी है। आदर्ष स्थिति वह होती है जब विचारक और साहित्यकार दोनों ही स्वतंत्र हों, बीच की स्थिति वह होती है जब विचारक और साहित्यकार दोनों स्वेच्छा से किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हो जावें, और सबसे बुरी स्थिति वह होती है। जब विचारक और साहित्यकार दोनों ही स्वतंत्र हों, बीच की स्थिति वह होती है जब विचारक और साहित्यकार दोनों स्वेच्छा से किसी विचारधाराएँ के प्रति प्रतिबद्ध हो जावें, और सबसे बुरी स्थिति वह होती है जब विचारधाराएँ अपने अपने स्वार्थ के आधार पर विचारक और साहित्यकार तैयार करने लगे तथा ऐसे साहित्यकार चारण या भाट के रुप में उन विचारधाराओं का गुणगान करने पर उतर आवें। वर्तमान समय में समाज में विचारको का अभाव हो गया है, मंथन प्रकिया मृतप्राय है, निष्कर्ष नहीं निकल रहे हैं, राजनेता या संगठन प्रमुख ही विचारक बन बैठे हैं। ये राजनेता जो निष्कर्ष निकालते हैं वही साहित्यकार के लिए विचार बन जाता है और साहित्यकार उसे निष्कर्ष मानकर पूरी ईमानदारी से समाज तक पहुंचा देता है। उक्त विचार न तो निष्कर्ष होता है न ही मंथन प्रकिया होती है अतः ऐसे संगठनों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष साहित्यकारों द्वारा समाज तक पहुॅचाने के बाद भी परिणाम शून्य या विपरीत ही होते हैं। राजनेता या धर्मगुरु दिल्ली से दहेज चिल्लाते हैं तो साहित्यकार भी दहेज ही दहेज को समस्या के रुप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जब राजनेता महंगाई,गरीबी,महिला अत्याचार का हल्ला करते हैं तब भी साहित्यकार इन मुददों को समाज तक पहुॅचाने में देर नहीं करता जबकि स्वतंत्र विचारकों के विचार मंथन के बाद पाया गया कि महंगाई ,गरीबी ,महिला अत्याचार, दहेज, षिक्षित बेरोजगारी जैसी समस्याएँ पूरी तरह अस्तित्वहीन हैं किन्तु साहित्य ने उसे इस तरह समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है कि पूरा समाज इन अस्तित्वहीन समस्याओं से भी स्वयं को पीडित करता है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर वर्ग संघर्ष के रुप में दिख रहा है। दोष तो यह है कि विचारकों के अभाव में राजनेता ही विचारक बन बैठे है। तीसरी तरह के साहित्यकार भी समाज की समस्याएँ नहीं है क्योंकि सब लोग उन्हें व्यक्ति पूजक चारण या भाट जानते है और मानते भी हैं। ऐसे घोषित प्रतिबद्ध साहित्यकारों तथा विचारकों का समाज पर विषेष प्रभाव नहीं होता। किन्तु दूसरे तरह के साहित्यकार बहुत घातक प्रभाव छोड़ रहे हैं। ये लोग स्वतंत्र न होकर किसी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होते है। साहित्यकारों में कई लोग मूल रुप से साहित्यकार नहीं होते बल्कि संस्थाए ऐसे लोगों की पहचान करके उन्हें दीक्षित करती है और धीरे धीरे साहित्य के क्षेत्र में स्थापित कर देती हैं। कई विदेषी एजेंट भी ऐसे प्रतिबद्ध लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान देकर उन्हें और बडी पहचान दिलाते हैं। ये लोग साहित्य के लिए विचारों का चयन नहीं कर पाते बल्कि साहित्य की विधा का अपने लिए उपयोग करते हैं। प्राचीनकाल में ऐसी समस्या यदा कदा ही होती थी किन्तु वामपंथ ने इसका भरपूर उपयोग किया। वामपंथ ने साहित्यकारों के गुट खडे कर लिए। साहित्यकार की स्वतंत्रता पूरी तरह प्रतिबद्ध हो गई। इन साहित्यकारों ने ऐसा ताना बाना बुना कि धर्मनिरपेक्षता,अमेरिका विरोध आदि विचार इनके बंधक बन गए। ये वामपंथी साहित्यकार धीरे धीरे साहित्य पर इस प्रकार छा गए कि स्वतंत्र साहित्य तो दिखना ही बन्द हो गया और और धीरे धीरे दक्षिणपंथी साहित्यकारों ने भी वही मार्ग चुना है। अब संस्कृति और राष्ट्रीयता शब्द इनके गुलाम बन गये हैं। किसी बात को किसी भी तरह तोड मरोडकर संघ परिवार के पक्ष में स्थापित करना इनकी साहित्यकला मानी जा रही है। भारत का साहित्यिक परिवेष दो विचारधाराओं के साहित्य युद्ध में फंस गया है। अब तक जिस तरह साहित्य पर वामपंथियों का कब्जा रहा किन्तु प्रारंभ में महाष्वेता देवी को नारंग जी के माध्यम से चुनाव में हराकर दक्षिण पंथ ने वामपंथी साहित्य को चुनौती दी तथा अब जे एन यू टकराव के माध्यम से हार जीत का खेल चल रहा है वह न साहित्य के लिए शुभ लक्षण है न विचारों के लिए। स्वतंत्र साहित्यकार को किसी राजनैतिक,धार्मिक विचारधारा मात्र का गुलाम नहीं होना चाहिए। वामपंथ पूरी तरह राजनैतिक उददेष्यों के लिए साहित्य का उपयोग कर रहा है। दक्षिण पंथ भी अब संघ परिवार के राजनैतिक उददेष्यों के लिए समर्पित है। नये नये शोध, नये नये निष्कर्षों को समाज तक पहुॅचाने के लिए स्वतंत्र साहित्यकार कहॉ मिलेंगे। क्या अब नए विचार इसलिए समाज से बाहर हो जायेंगे कि उसे स्थापित करने के लिए उसके साथ स्वतंत्र साहित्यकारों का अभाव है। आज की जो स्थिति है इसके लिए वामपंथी दोषी है कि दक्षिण पंथी यह मेरी चिंता का विषय नहीं हैं, मेरी चिंता तो यह है कि स्वतंत्रता कहॉ जाकर पैर जमा सकेगी। मैं चाहता हूॅ कि साहित्य समाज में विचारों का संवाहक बने और रहे। किन्तु वह किसी पेषेवर दुकान का ट्रेडमार्क बनने से बचे अन्यथा साहित्य भी उसी तरह दलदल में फंस जाएगा जिस तरह धर्मनिरपेक्षता या भारतीय संस्कृति। पिछले कई सौ वर्षो से भारत में विचार मंथन का स्तर लगातार नीचे जा रहा है। नए स्वतंत्र और गंभीर विचारक निकल नही पा रहे हैं। और यदि अपवाद स्वरुप कोई निकलता भी है तो उसका स्तर पिछले विचारको की तुलना में बहुत कमजोर होता है। क्योंकि न तो ऐसे विचारकों को साहित्य का कोई सहारा मिल पाता है,न ही समाज का। प्रतिबद्ध संगठन ऐसे गंभीर विचारकों के प्राथमिक लक्षण दिखते ही उन्हें अपना पिछलग्गू बनाने के लिए येन केन प्रकारेण प्रयासरत हो जाते हैं। स्थिति निराषाजनक है। फिर भी पिछले एक दो वर्षो से कुछ अप्रतिबद्ध विचारक सोषल मीडिया तथा अन्य माध्यमों से स्वतंत्र विचार के क्षेत्र में आगे बढने का प्रयास कर रहे हैं। यद्यपि कभी कभी ऐसा दिखता है कि ऐसे स्वतंत्र विचारों को प्रतिबद्ध वामपंथी या दक्षिणपंथी साहित्यकारों का विरोध भी झेलना पडता हैं, किन्तु सामाजिक जागरुकता ऐसे स्वतंत्र विचारों को धीरे धीरे आगे बढा रही है। निराष होने की कोई बात नहीं है। फिर से विचारकों का स्तर और प्रभाव बढेगा। साहित्य ऐसे स्वतंत्र विचारों को आगे बढाएगा। और समाज का अथःपतन रुककर उत्थान की दिषा में जायेगा।

प्रष्न–1 विचारक और साहित्यकार के बीच ऐसी क्या पहचान है जो सामान्य नागरिक आसानी से समझ सके। प्रतिबद्ध या नकली विचारक और साहित्यकार की भी पहचान है क्या?

उत्तर– मैंने इन प्रष्नों पर विचार किया। विचारक भी कई प्रकार के होते हैं। ये धार्मिक,सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय या वैष्विक स्तर तक की सीमा के हो सकते हैं। इसी तरह साहित्कार भी कलाकार, नाटककार, लेखक, प्रवचनकर्ता ,कवि आदि कई तरह के हो सकते हैं। यदि कोई विचारक स्वतंत्र होगा तो उसकी नीयत कभी खराब नहीं होती। इसी तरह स्वतंत्र कलाकार की भी नीयत पर कभी संदेह नहीं हो सकता। किन्तु नीयत का आकलन सामान्य नागरिक आसानी से नहीं कर सकता इसलिये कुछ अन्य पहचान बता रहा हूँ।

(1) विचारक जब भी कुछ बोलता है तो कभी विस्तार से न बोलकर बहुत संक्षिप्त बोलता है तथा सूत्र रुप में बोलता है जबकि साहित्यकार बहुत अधिक विस्तार से बोलता है।

(2) विचारक बोलते समय अपने हाथ पैर नहीं हिलाता। बोलते समय उसके चेहरे के हाव भाव भी कभी नहीं बदलते। विचारक कभी अपने कथन की पुष्टि के लिये किसी तरह का दायें बायें देखना या अन्य शारीरिक क्रिया का सहारा नहीं लेता जबकि कलाकार साहित्यकार या नेता हाथ पैर से लेकर चेहरे के भाव तक में शारीरिक रुप से बहुत अधिक सक्रिय रहता है।

(3) विचारक आमतौर पर अपने विचार ही बताता है। पुराने विद्वानों के निष्कर्षो के उद्धरण या उदाहरण यदा कदा ही देता है, आमतौर पर नहीं। साहित्यकार भारतीय या विदेषी विद्वानों के कथन को उदाहरण स्वरुप आमतौर पर बोलता है। जो व्यक्ति गॉधी,चाणक्य,मार्क्स राम ,बुद्ध,विवेकानंद आदि के कथन को आधार बनावे वह विचारक नहीं क्यों विचारक अपनी बात ही रखता है दूसरों की नहीं।

(4) विचारक कभी किसी काल्पनिक घटना को सच बताकर नहीं बोलता। जब भी बोलेगा तो सत्य घटना बोलेगा या उदाहरण देगा ही नहीं। प्रवचन कर्ता या साहित्यकार आमतौर पर काल्पनिक घटनाओं को सत्य के समान प्रस्तुत करते हैं।

(5) विचारक जब बोलता है तो श्रोता या तो सो जाता है या पडोसी से बात करता है या जल्दी समाप्त होने की प्रतीक्षा करता है। साहित्यकार के साथ ऐसा नहीं होता। साहित्यकार के साथ श्रोता का प्रत्यक्ष तारतम्य बना रहता है।

(6) विचारक समस्याओं या वर्तमान स्थिति की संक्षिप्त चर्चा करके समाधान पर अधिक बोलता है । साहित्यकार समाधान की अपेक्षा समस्या तक ही अधिक सीमित रहता है।

(7) विचारक व्यावहारिक समाधान की बात करता है तो साहित्यकार उच्च आदर्षकारी ।

(8) विचारक इस बात की चिंता नहीं करता कि श्रोता उससे प्रभावित है या नहीं। साहित्यकार या कलाकार निरंतर यह देखता रहता है कि उसके कथन का श्रोता पर कितना प्रभाव पड़ रहा है।

और भी अन्तर हो सकते है जो आपके लिखने से समझ में आयेगें।

मंथन क्रमांक 20 ग्राम संसद अभियान

दो कथानक विचारणीय हैं–

1) प्रबल राक्षस किसी तरह मर ही नहीं रहा था क्योंकि कथानक के अनुसार उसके प्राण सात समुद्र पार पिंजरे में बंद तोते के गले में थे। तोते को मारते ही राक्षस की मृत्यु हो गई।

2) रावण को राम कितना भी मारते थे किन्तु वह मरता नहीं था क्योंकि उसकी नाभि में अमृतकुंड था। विभीषण ने राम को बताया और जब नाभि पर आक्रमण हुआ तब रावण मरा।

हम भारत की वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का आकलन करें तो भौतिक उन्नति तेज गति से हो रही है । जीवन स्तर सबका सुधर रहा है। नैतिक पतन भी बहुत तेजी से हो रहा है। ग्यारह समस्याऍ लगातार बहुत तेजी से बढ रही है–(1) चोरी, डकैती,लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौलना (4) जालसाजी, धोखाधडी (5) बल प्रयोग, हिंसा ,आतंकवाद (6) भ्रष्टाचार (7) चरित्रपतन (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक असमानता (11) श्रम शोषण। स्वतंत्रता के बाद ये सभी ग्यारह समस्याऍ लगातार बढ रही हैं और भविष्य में भी किसी के समाधान के कोई लक्षण नहीं दिखते। इनमें से पहली 5 समस्याऍ तंत्र की निष्क्रियता के कारण बढी हैं तो अंतिम छः तंत्र की अतिसक्रियता के कारण बढी हैं।

तंत्र हमेषा लोक को गुलाम बनाकर रखना चाहता है और लोकतंत्र में लोक ही मतदाता होता है। इसलिए तंत्र मतदाताओं को 10 प्रकार के नाटको के माध्यम से उलझाकर भ्रम में रखता है।

1) समाज में आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके वर्ग विद्वेष फैलाना और उसे वर्ग संघर्ष तक ले जाना।
2) समस्याओं का ऐसा समाधान खोजना कि उस समाधान से ही एक नई समस्या पैदा होती हो।
.3) समस्या की प्रवृत्ति के विपरीत समाधान की प्रकृति।
4) राष्ट्र षब्द को ऊपर उठाकर समाज षब्द को नीचे गिराना।
5) वैचारिक मुद्दों पर बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों को आगे लाना।
6) समाज को षासक और षासित में बांटकर दोनों के मनोबल में फर्क करने का संगठित प्रयास।
7) समाज द्वारा स्वयं को अपराधी मानने की भावना का विकास।
8) षासन की भूमिका बिल्लियों के बीच बंदर के समान।

9) आर्थिक असमानता वृद्धि का प्रजातांत्रिक स्वरूप।
10) प्राथमिकताओं के क्रम में सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जन कल्याणकारी कार्यो का उच्च स्थान रखना।

तंत्र से जुडी तीनों इकाईयॉ इन दस प्रकार के नाटको में ईमानदारी से एक जुट होकर लगी रहती हैं। भले ही अन्य मामलों में वे आपस में क्यों न निरंतर टकराती रहें। समाज को तोडकर रखने के लिए वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष का सहारा लिया जाता है उसके लिए 8 आधार निष्चित हैं–1 धर्म 2 जाति 3 भाषा 4 क्षेत्रियता 5 उम्र 6 लिंग 7 गरीब अमीर 8 किसान मजदूर। सभी राजनैतिक दल निरंतर आठों आधारों पर लगातार सक्रिय रहते हैं। सात आधारों पर तो समाज को तोडा जाता है और लिंग भेद का आधार परिवार को भी पूरी तरह तोड रहा है। कोई उत्तर नहीं देता कि यदि सारे देष में मुसलमान और इसाई शून्य हो जावें तो ग्यारह में से दस समस्याओं पर धार्मिक एकीकरण का क्या प्रभाव होगा। कोई गरीबी अमीरी रेखा के नाम पर समाज को तोड रहा है किन्तु कभी यह उत्तर नहीं मिला कि ऐसा होने से आर्थिक असमानता को छोडकर बाकी 10 समस्याओं पर क्या प्रभाव पडेगा।

देषभर में इन समस्याओं के समाधान के लिए आन्दोलन भी बहुत होते रहे हैं। अनेक आन्दोलनों में देष की करोडो अरबों की सम्पत्ति बरबाद हो जाती है। बडी संख्या में लोग अपनी जान तक दे रहे हैं किन्तु समस्याएँ घटने की अपेक्षा बढती ही जा रही हैं। समाज में जो भी आन्दोलन या टकराव हो रहे हैं वे भौतिक सुविधाओं के नाम पर हो रहे हैं। आज तक एक भी ऐसा आन्दोलन नहीं चल रहा है जो लोक और तंत्र के बीच गुलाम और मालिक सरीखी दूरी को कम करने के लिए हो। सुविधा और स्वतंत्रता में से स्वतंत्रता की बात करने वाले कोई नहीं दिखते। सब सुविधाओं की बात करते हैं। आज इसी का परिणाम है कि लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम सरीखे संबंध बन गये हैं। तंत्र ने वोट देने का अधिकार देकर बाकी सारे अधिकार अपने पास समेट लिये है। लोक भिखारी और तंत्र दाता बन गया है।

तंत्र ने बहुत चालाकी से संविधान को एक तरफ अपनी ढाल बनाया है तो दूसरी तरफ अपनी मुटठी में कैद रखा है। एक तरफ संविधान को भगवान सरीखे प्रचारित किया जाता है। तो दूसरी ओर जब चाहे तभी तंत्र बिना लोक से पूछे संविधान में मनमाना संषोधन कर देता है और वह संषोधन लोक की इच्छा के रुप में प्रचारित कर दिया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि संविधान तंत्र को हमेषा अघोषित सुरक्षा देता है दूसरी ओर तंत्र संविधान का मनमाना दूरुपयोग भी करता रहता है। स्पष्ट है कि भारत में संविधान का शासन है और संविधान पर तंत्र का एकाधिकार है। इसलिए जब तक संविधान तंत्र के एकाधिकार से मुक्त नहीं होता तब तक समस्याओं के समाधान की शुरुवात नहीं हो सकती। तंत्र ने लोक को व्यवस्था में भी सहयोगी माना है और संविधान निमार्ण में भी। इस सहयोग की भावना को सहभागी की दिषा में बदलने की आवष्यकता है अर्थात संविधान संषोधन में लोक और तंत्र एक दूसरे के सहभागी हों। यह स्थिति नहीं होना ही समस्याओं के समाधान की सबसे बडी बाधा है और इस बाधा को दूर किये बिना न रावण रुपी तंत्र पर अंकुष लग सकता है न ही राक्षस रुपी तंत्र पर अंकुष लग सकता है न ही राक्षस को पराजित किया जा सकता है।

इस दिषा में सम्पूर्ण भारत में एक ऐसा अभिनव प्रयास हो रहा है जिसे हम ग्राम संसद अभियान के नाम से कह सकते हैं । इस अभियान के अन्तर्गत पूरे देष के करीब दस लाख गावों और वार्डो को ग्राम संसद का नाम और स्वरुप दिलाये जाने की योजना है। ये ग्राम संसदें मिलकर 543 सदस्यों का चुनाव करेंगी जो निर्दलीय आधार पर चुने जायेंगे। इसे संविधान सभा कहा जायेगा। संविधान सभा वर्तमान संविधान की पूरी समीक्षा करके संषोधन के प्रस्ताव तैयार करेगी तथा वर्तमान संसद को विचारार्थ देगी। यदि किसी सुझाव पर संविधान सभा और वर्तमान संसद अंतिम रुप से असहमत होंगे तो दस लाख ग्राम संसदें उस सुझाव पर अंतिम निर्णय देंगी। मेरे विचार से यह एकमात्र प्रयास है जिस पर सब लोगों को लगना चाहिए। ग्राम संसद अभियान को देष भर में जनजागरण के रुप में फैलाने का दायित्व व्यवस्थापक समूह कर रहा है। एक वर्ष में अब तक 400 जिलो में शुरुवात हो चुकी है। अन्य जिलों में भी प्रगति जारी है। आगामी 17 से 19 मार्च 2017 को कम्युनिटी सेंटर, पार्क प्लाजा होटल के पीछे सेक्टर–55, नोएडा उत्तर प्रदेष में तीन दिनों का एक राष्ट्रीय विचार मंथन सम्मेलन आयोजित है। इस सम्मेलन में आगे की योजना बनेगी। प्रस्ताव है कि यह अभियान सिर्फ जागरण तक ही सीमित होगा। किसी आन्दोलन की दिषा में नहीं जायेगा। किसी भी परिस्थिति में कोई कानून नहीं तोडा जायेगा। एक या डेढ वर्ष के बाद जंतर मंतर पर 10 दिवसीय जनसंदेष कार्यक्रम रखने की भी योजना बनेगी। जंतर मंतर के कार्यक्रम के पूर्व यह अंतिम सम्मेलन है इसलिए काफी गहन विचार विमर्ष की तैयारी है। यह कार्यक्रम किसी संगठन का नहीं होकर जनजागरण का है। इसलिए इसमें शामिल होने के लिए सब लोग स्वतंत्र हैं और आयोजको के अनुसार देष भर के तीन चार सौ लोग इसमें शामिल हो सकते है।

जहॉ तक मेरी जानकारी है उसके अनुसार यह एकमात्र प्रयास है जो सही दिषा में सही तरीके से आगे बढ रहा है। यह प्रयास सरकार के खिलाफ नहीं है। संविधान के खिलाफ भी नहीं है बल्कि लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम के समान असीमित दूरी को घटाने की दिषा में प्रयास है। सारे देष में व्यवस्था परिवर्तन अभियान के नाम से अनेक संगठन कार्य कर रहे है मैने स्वयं सबको समझा। मैं आष्वस्त हू कि व्यवस्था परिवर्तन की दिषा में सक्रिय अन्य सभी संगठन व्यवस्था में सुधार तक सीमित है। उन्हें व्यवस्था परिवर्तन का वास्तविक अर्थ ही नहीं मालूम। लोक और तंत्र के बीच तंत्र से सुविधाये लेना

व्यवस्था परिवर्तन नहीं है बल्कि व्यवस्था परिवर्तन तो यह है कि वर्तमान लोक और तंत्र के बीच अधिकारों की असीम असमानता समानता तक आवे। मैं स्वयं त्रिदिवसीय इस कार्यक्रम में रहूँगा। मैं चाहता हूँ कि हमारे अन्य पाठक या विद्वान भी अन्य साथियों सहित कार्यक्रम में आवे और हम आप सब मिलकर ग्राम संसद अभियान की इस योजना को अपने सुझाव मार्गदर्षन या सहयोग पर विचार करें।

मंथन क्रमांक 21 श्रमषोषण और मुक्ति

व्यक्ति अपने जीवनयापन के लिए तीन माध्यमों का उपयोग करता हैं– (1) श्रम (2) बुद्धि (3) धन।

जिस व्यक्ति के जीवनयापन की आधे से अधिक आय शारीरिक श्रम से होती है उसे श्रमजीवी कहा जाता है। जिसकी आधे से अधिक बुद्धिप्रधान कार्यों से होती है उसे बुद्धिजीवी तथा जिसकी धन के माध्यम से होती है उसे पूँजीपति माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के पास श्रम भी होता है,बुद्धि भी होती है तथा धन भी होता है। किन्तु किसी व्यक्ति में एक से अधिक गुण प्रधान नहीं होते। प्रधान तो एक ही होता है अन्य तो सहायक होते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय श्रम,बुद्धि या धन की प्रधानता को अपनी क्षमता के अनुसार कभी भी बदल लेता है। श्रमजीवी भी कभी पूँजीपति बन जाता है तो पूँजीपति भी कभी श्रमजीवी। पूँजीपति या बुद्धिजीवी कभी गरीब नहीं हो सकता। आमतौर पर श्रमजीवी ही तथा कुछ मात्रा में अधिक अच्छे बुद्धिजीवी जिन्हें प्राचीन समय में ब्राम्हण कहा जाता था वे गरीब होते है अन्यथा अन्य कोई भी बुद्धिजीवी कभी गरीब नहीं हो सकता क्योंकि श्रमजीवी के पास श्रम के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। जबकि बुद्धिजीवी और पूँजीपति के पास एक से अधिक विकल्प हमेषा मौजूद रहते हैं। श्रमजीवी की अधिकतम आय 10000 रु मासिक से अधिक नहीं हो सकती किन्तु बुद्धिजीवी की अधिकतम आय लाखों रुपये मासिक तक हो सकती है और पूँजीपति की अधिकतम आय करोडों रु मासिक तक हो सकती है। सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार भारत में करीब 20 करोड ऐसे लोग मौजूद हैं जिनकी मासिक आय प्रतिव्यक्ति 1000 और पांच व्यक्तियो के परिवार की 5000 से भी कम हैं। सरकार के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की प्रतिव्यक्ति दैनिक आय 32 रु और दैनिक श्रममूल्य 160 रु के आसपास है। प्राचीन समय में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालो को भिक्षा मांगने का विकल्प भी दिया गया था। इनमें गरीब,श्रमजीवी तथा गरीब ब्राम्हण शामिल थे बाद में इसमें विकृति आ गई।

श्रमषोषण कब से शुरु हुआ इसका इतिहास मुझे नहीं मालूम। इतना अवष्य पता है कि बहुत प्राचीन समय में समाज में श्रमषोषण नहीं था। योग्यतानुसार परीक्षा के बाद वर्ण का निर्धारण होता था। कालांतर में धीरे–धीरे विकृति आयी और बुद्धिजीवियों ने श्रमषोषण प्रारंभ कर दिया अर्थात जन्म से ही वर्ण का निर्धारण होने लगा। ब्राम्हण का लडका ब्राम्हण और श्रमिक का लडका श्रमिक रहने के लिए और जीवन भर रहने के लिए अधिकृत और बाध्य कर दिया गया। यही है श्रमषोषण का इतिहास । योग्यता रहते हुए भी कोई व्यक्ति अपने वर्णो से बाहर नहीं जा सकता था। इस तरह की विकृति के परिणाम स्वरुप भारत लम्बे समय तक गुलाम भी रहा किन्तु उसने इस विकृति से छुटकारा नहीं किया। इस प्रकार का बौद्धिक आरक्षण ही भारत की गुलामी का मुख्य कारण था। स्वामी दयानंद तथा गॉधी ने इस समस्या को दूर करने का प्रयत्न किया किन्तु भीमराव अम्बेडकर ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण सब गुड गोबर कर दिया।

स्वतंत्रता के बाद भी बुद्धिजीवियों ने अपना षडयंत्र जारी रखा। स्वतंत्रता के पूर्व समाज में सामाजिक आरक्षण था कानूनी नहीं किन्तु स्वतंत्रता के बाद बुद्धिजीवियों ने ऐसे आरक्षण को कानूनी जामा भी पहना दिया । अंतर यह हुआ कि स्वतंत्रता के पूर्व शतप्रतिषत आरक्षण सवर्ण बुद्धिजीवियों का था तो स्वतंत्रता के बाद अम्बेडकर ,नेहरु का समर्थन पाकर उस शतप्रतिषत आरक्षण में से 20–25 प्रतिषत आरक्षण अवर्ण बुद्धिजीवियों ने भी लेकर श्रमषोषण के अपवित्र कार्य में हिस्सेदार बना लिया। यह लूट के माल में हिस्सेदारी बकायदा कानून बनाकर हुई और आज भी जारी है। भारत के आदिवासियों और हरिजनों की कुल आबादी में स्वतंत्रता के समय भी 90 प्रतिषत श्रमजीवी थे और आज भी 90 प्रतिषत ही हैं। शेष 10 प्रतिषत आदिवासी हरिजन बुद्धिजीवियों ने अपने श्रमजीवी भाईयों के शोषण में हिस्सेदारी लेकर सवर्ण बुद्धिजीवियों के साथ समझौता कर लिया। आज भी आप देखेंगे कि आरक्षण की लडाई में सवर्ण बुद्धिजीवी और अवर्ण बुद्धिजीवी ही आपस में टकराते रहते है किन्तु दोनों में से कोई भी समूह 90 प्रतिषत श्रमजीवियों की चिंता नहीं करता। आज भी आप देखेंगे कि भारत का हर बुद्धिजीवी चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण पूरी ईमानदारी से भीमराव अम्बेडकर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है क्योंकि डॉ अम्बेडकर ने ही उन्हें मिलकर श्रमषोषण का कानूनी लाइसेंस प्रदान कराया है।

भारत में लोकतांत्रिक तरीके से सफलतापूर्वक श्रमषोषण के लिए चार माध्यम अपनाये जाते हैं– (1) आरक्षण (2) कृत्रिम उर्जा मूल्य नियंत्रण (3) षिक्षित बेरोजगारी (4) श्रममूल्य वृद्धि। सबसे बडा आष्चर्य है कि इन चार आधारों पर बुद्धिजीवी श्रम का शोषण भी करते है तथा इन्हें श्रम समस्याओं का समाधान भी बताते हैं। इस कार्य में सबसे ज्यादा भूमिका वामपंथियों की रही है। वामपंथी पूरी ताकत से चारों आधारों पर सक्रिय रहते हैं किन्तु अब तो धीरे धीरे सभी बुद्धिजीवियों को श्रमषोषण में मजा आने लगा है और भारत का हर बुद्धिजीवी और पूँजीपति इन चारों सिद्धांतो को विस्तार देने में लगा रहता है। आरक्षण की चर्चा तो हम उपर कर चुके है। कृत्रिम उर्जा मूल्य नियंत्रण भी आज लगातार जारी है। स्पष्ट है कि कृत्रिम उर्जा श्रम की

प्रतिस्पर्धा मानी जाती है और श्रम की मांग तथा मूल्यवृद्धि में बाधक होती है किन्तु भारत में कृत्रिम उर्जा का मूल्य सिर्फ इसलिए नहीं बढने दिया जाता क्योकि उससे श्रम का मूल्य और मांग बढ जायेगी। कृत्रिम उर्जा सस्ती हो यह बहुत बडा षडयंत्र है, श्रम का शोषण करने का यह पूँजीवादी मंत्र है।

दुनिया जानती है कि षिक्षित व्यक्ति कभी बेरोजगार नहीं हो सकता भले ही वह उचित रोजगार की प्रतिक्षा में बेरोजगार बने रहने का नाटक ही क्यों न करें किन्तु हमारे बुद्धिजीवियों ने बेरोजगारी की एक नकली परिभाषा बनाकर उस परिभाषा के आधार पर षिक्षित लोगों को भी बेरोजगार घोषित करना शुरु कर दिया। आज तक इस परिभाषा में कोई संषोधन नहीं किया जा रहा है। कितने दुख की बात है कि श्रमजीवियों द्वारा उत्पादित कृषि उपज वन उपज पर भारी टैक्स लगाकर षिक्षा पर भारी खर्च किया जा रहा है । बेषर्म बुद्धिजीवी आज भी षिक्षा का बजट बढाने की अन्यायपूर्ण मांग करते देखे जाते है किन्तु कोई नहीं कहता कि गरीब ग्रामीण श्रमजीवी द्वारा उत्पादन और उपभोग की वस्तुओं पर टैक्स लगाकर षिक्षा पर व्यय करना अन्याय है। भारत का हर संगठन यह मांग करता है कि श्रम का मूल्य बढाया जाये। एक सीधा सा सिद्धांत है कि किसी वस्तु का मूल्य बढता है तो मांग घटती है और मांग घटती है तो मूल्य घटता है। स्पष्ट है कि भारत में दो प्रकार के श्रम मूल्य चल रहे है– (1) मांग के आधार पर (2) घोषणा के आधार पर । ज्यों ही सरकार श्रम मूल्य बढाती है त्यों ही श्रम की मांग घटकर मषीनों की ओर बढ जाती है और श्रम के बाजार मूल्य तथा कृत्रिम मूल्य के बीच दूरी बढ जाती है। आज भी यह दूरी निरंतर बनी हुई है और इसे घटाने का प्रयास न करके बढाने का प्रयास हो रहा है।

इसके पक्ष में तर्क दिया जाता है कि दुनिया के अनेक विकसित देष इस आधार पर प्रगति कर रहे हैं किन्तु हम यह भूल जाते है कि वे विकसित देष श्रम अभाव देष है और भारत श्रम बहुल देष। यदि हम साम्यवादी देषों की नकल कर रहे हैं तो हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि साम्यवाद में व्यक्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता है और भारत में स्वतंत्र जीव। साम्यवाद में व्यक्ति को मूल अधिकार नहीं होते और भारत में ऐसे अधिकार होते हैं। इसलिए साम्यवाद या पष्चिम के देषों की नकल करते हुये यदि भारत में श्रमषोषण को न्याय संगत ठहराया जाता है तो यह अमानवीय है और चाहे सारी दुनिया ऐसे श्रमषोषण के विरुद्ध भले ही आवाज न उठावे किन्तु मैं तो ऐसे अमानवीय कृत्य के विरुद्ध आवाज उठाउँगा। श्रम के विरुद्ध बुद्धिजीवियों का इतना बडा षडयंत्र होते हुए भी यदि चुप रहा जाये तो मेरी दृष्टि में यह पाप है। आज भारत में यदि नक्सलवाद दिख रहा है तो उसके अनेक कारणों में यह कारण भी एक है । नक्सलवादियों को यह बहाना मिला हुआ है। आप विचार करिये कि बुद्धिजीवियों द्वारा इस तरह श्रमजीवियों के साथ लोकतांत्रिक षडयंत्र होता रहे और हम चुपचाप देखते रहें यह कैसे उचित और संभव है । 20 वर्ष पहले तो मुझे कभी कभी ऐसा लगता था कि मैं भी बंदुक उठाकर नक्सलवादियों के साथ हो जाऊ किन्तु अग्रवाल परिवार में जन्म लेने के कारण संस्कार मुझे रोक देते थे। फिर भी मैं अपनी आवाज उठाने से चुप नहीं रह सकता।

श्रमषोषण से मुक्ति के कुछ उपाय किये जा सकते हैं–(1) परिवार व्यवस्था को सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में कानूनी मान्यता दी जानी चाहिए। गरीब या बेरोजगार व्यक्ति नहीं परिवार माना जाना चाहिये। (2) गरीब ग्रामीण श्रमजीवी के सभी प्रकार के उत्पादन और उपभोग की वस्तुओं को कर मुक्त करके सारा टैक्स कृत्रिम उर्जा पर लगा देना चाहिये। (3) षिक्षा पर होने वाला सारा बजट षिक्षा प्राप्त कर रहे या कर चुके लोगों से पूरा किया जाना चाहिये। (4) सरकार जो भी श्रममूल्य घोषित करे उस श्रममूल्य पर किसी भी बेरोजगार को रोजगार देने की सरकारी बाध्यता होनी चाहिये।

मैं समझता हूँ कि अभी यदि इतने भी उपाय कर लिये जाये तो श्रम , बुद्धि और धन के बीच बढती हुई अन्यायपूर्ण दूरी कम हो सकती हैं। और भी अन्य उपाय हो सकते है किन्तु श्रमषोषण में सक्रिय चार व्यवस्थाओं पर तत्काल रोक लगनी चाहिये। यदि श्रम के साथ न्याय नहीं हुआ तो यह कभी भी समाज में शांति नहीं स्थापित होने देगा। बंदूके कुछ समय के लिये आवाज को रोक सकती है किन्तु सदा के लिए नहीं रोक सकती। मैं समझता हूँ कि इस विषय पर गंभीरता से विचार मंथन का प्रयास होगा।

उत्तरार्ध

हम आप मिलकर भारतीय लोकतंत्र को संसदीय लोकतंत्र की जगह सहभागी लोकतंत्र की दिषा मे ले जाने का मार्ग खोजते रहते हैं। चार मुददों पर चर्चा चलती रही । अक्टूबर 15 से देष भर मे जन जागरण की योजना बनाने की तैयारी शुरू हुई । करीब चार सौ पचास जिलों तक सम्पर्क हुआ है। शेष में जारी है। जागरण के लिये एक सूत्रीय मुददे की आवष्यकता महसूस हुई है। इस सम्मेलन मे उस पर भी व्यापक चर्चा होगी।

जागरण संदेष के दस दिवसीय जंतर मंतर के कार्यक्रम के पूर्व एक तैयारी बैठक नीचे लिखे समय और स्थान पर आयोजित है। देष भर के प्रमुख साथियों तथा मित्रों के इस सम्मेलन मे पूरी योजना बनेगी । आप साथियों सहित अवष्य आने की कृपा करें। जंतर मंतर के दस दिवसीय जन संदेष के पूर्व यह अंतिम बैठक है। अतः आपको अवष्य आना चाहिये। भोजन और निवास की व्यवस्था आयोजन समिति करेगी।

चर्चा का विषय

1. नाम–ग्राम संसद 2. प्रस्ताव–क–देष की स्थानीय इकाइयों (ग्राम+वार्ड) को ग्राम संसद का नाम और स्वरूप दिया जाये। ख–ग्राम संसदो द्वारा निर्दलीय निर्वाचित पांच सौ तैतालीस सदस्यो की संविधान सभा राइट टू रिकॉल, जीवन भत्ता, श्रम न्याय, लोकपाल नियुक्ति, सांसद वेतन भत्ता, समान नागरिक संहिता, संविधान संषोधन प्रक्रिया सहित सभी विषयों पर विचार करके संविधान संषोधन प्रस्ताव तैयार करे जिस पर संसद और संविधान सभा अंतिम निर्णय करें। ग– यदि किसी प्रस्ताव पर संसद और संविधान सभा अंतिम रूप से सहमत न हों तो ग्राम संसद निर्णय करें। घ– नई व्यवस्था होने

तक यदि संसद संविधान संषोधन करे तो ग्राम संसदो की स्वीकृति अनिवार्य हो। 3. सीमा –जन जागरण। किसी भी परिस्थिति में किसी कानून का उल्लंघन नहीं किया जायेगा। 4. क्षेत्र –न्यूनतम सम्पूर्ण भारत 5. हमारी संरक्षण सभा को वीटो का अधिकार होगा। 6. संषोधन–उपरोक्त मे किसी प्रकार का कोई संषोधन जिला प्रतिनिधि, सम्मेलन से ही किया जा सकता है। 7 जंतर मंतर के प्रस्तावित दस दिवसीय जन संदेष कार्यक्रम की रूप रेखा और तैयारी, 8 लोक प्रदेष प्रमुख, नीति निर्धारण समिति के सदस्य, लोक प्रदेष संरक्षक, आदि का चयन। 9 लोक प्रदेष कमेटी तथा लोक जिला (ब्लाक) कमेटी का गठन। 10 अन्य तात्कालिक विषयो पर चर्चा।

सम्मेलन का स्थान– कम्युनिटी सेंटर, पार्क प्लाजा होटल के पीछे सेक्टर–55, नोएडा उत्तर प्रदेष।

दिनांक–सत्रह, अठारह, उन्नीस मार्च दो हजार सत्रह।

सम्पर्क सूत्र– टीकाराम देवरानी 8826290511, 8920087023

निवेदक

व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी

कार्यालय का पता

बजरंग मुनि,कमल हॉस्पीटल के सामने षिप्रा कृष्णा एज्योर फ्लैट नं0 303 कौषाम्बी जिला गाजियाबाद । मो0–